जैन संस्कृति में नारी का महत्व

❑ महासती डॉ. श्री धर्मशीला

सन्नारी को जैनागमों में 'देव-गुरु-धम्मजण्णी', 'धम्म सहाइया,' 'चारुप्पेहा' आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया है। नारी कहीं उद्‌बोधन रूपा है तो कहीं सेवा की प्रतिमूर्ति। नारी-गरिमा का जैनदर्शन में सर्वत्र स्वर गुंजरित हुआ है। नारी, नर से अधिक धर्मपरायणा है एवं कर्तव्यशीला भी।

विदुषी साध्वी डॉ. श्री धर्मशीलाजी म. ने अपने नारी विषयक आलेख में 'नारी-महिमा' का सांगोपांग विश्लेषण किया है। — सम्पादक

विविधरूपा नारी

नारी धर्म पालन में, धर्म प्रचार में एवं धर्म को अंगीकार करने में पुरुषों से अग्रणी है। यद्यपि नारी के रूप, स्वभाव, शिक्षा, सहयोग एवं पद समय के अनुसार बदलते रहे हैं। जन्मदात्री माता से लेकर कोठे की घृणित व प्रताड़ित वेश्या के रूप में भी वह समय-समय पर हमारे समक्ष आई है। यशोदा बनकर लालन-पालन किया है तो कालिका बनकर असुरों का संहार भी किया है, साक्षात् वात्सल्य की प्रतिमूर्ति भी रही है। समय व काल की गति अनंत व अक्षुण्ण है, इससे परे न कोई रहा है न रह सकेगा। कालचक्र से सभी बंधे हैं फिर भला कोई समाज या धर्म उससे विलग कैसे रह सकता है?

नारी नर की अर्धांगिनी, मित्र, मार्गदर्शिका व सेविका के रूप में हमेशा-हमेशा से समाज में अपना अस्तित्व बनाती रही है किंतु कभी-कभी तुला का दूसरा पलड़ा अधिक वजनदार हुआ तो नारी को चार दिवारी की पर्दानसीं, विलासिता, भोग की वस्तु मात्र, सेवा तथा गृहकार्य करनेवाली इकाई भी माना गया। कर्तव्यपरायण बनकर चुपचाप जुल्म सहना ही उसकी नियति बन गई व बदले में उसे सिसकने तक का अधिकार भी नहीं रहा। अधिकार के बिना कर्तव्य का न ही मूल्य रह जाता है न ही औचित्य किंतु समय-समय पर समाज में जागृति व क्रांति की लहर आयी जिसने नारी को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराया।

जैन धर्म और नारी

जैन समाज में आदिकाल से ही नारी सम्माननीय व वन्दनीय रही है। कुछेक अपवाद छोड़कर नारी परामर्शदात्री व अंगरक्षक भी रही है। नारी अपने समस्त उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के साथ ही साथ धर्मपालन, नियम, व्यवहार, स्वाध्याय उपवास आदि में अधिक समय देकर पुरुषों से कई गुना आगे हैं।

यदि हम समाज एवं राष्ट्र को प्रगति व उपलब्धि के मार्ग पर प्रशस्त करना चाहते है, यदि हम भगवान् महावीर की शिक्षाओं को व्यवहार में उतारना चाहते हैं, यदि हम समाज व देश में शिक्षा, अनुशासन भाईचारा व एकता का शंखनाद फूँकना चाहते है तो हमें नारी को उनके साधिकार व उनके उपयोग की स्वतंत्रता देनी होगी, उन्हें उनकी शक्ति, शौर्य, शील व तेज की याद दिलानी होगी।

जैनधर्म हो या अन्य धर्म, नारी का झुकाव पुरुषों की तुलना में धर्म की ओर अधिक ही होता है। यदि हम वर्तमान परिस्थितियों में देखें तो पायेंगे कि सेठजी की अपेक्षा सेठानी जी नित्यमेव धर्म-कर्म, स्वाध्याय, नियम-पालन, एकासना, उपवास आदि नियमित व आस्था से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करती है जबकि उन्हें एक बहू, बेटी, माँ, बहन या पत्नि का कर्तव्य भी निभाना पड़ता है। पुरुषवर्ग यह कहकर अपने दायित्व से हट जाते हैं कि हमें व्यापार, वाणिज्य-प्रवास आदि कार्य में व्यस्त रहना पड़ता है अतः नियम का पालन संभव नहीं।

धर्म के मर्म को जितनी पैनी व सूक्ष्म दृष्टि से महिला वर्ग ने देखा, जांचा एवं परखा है, उतना पुरुषवर्ग ने नहीं और यही कारण है कि आज जैनधर्म के उत्थान में, प्रचार-प्रसार में नारी की भूमिका अहम् है, प्रशंसनीय है, स्तुत्य है।

जैन संस्कृति में नारी की महिमा और गरिमा अद्वितीय है। प्राचीन काल में नारी जैन संस्कृति की सजग प्रहरी थी, वह एक ज्योति-स्तंभ के रूप में रही थी। इतना ही नहीं वह अध्यात्म चेतना और बौद्धिक उन्मेष की परम-पुनीत प्रतिमा थी। अध्यात्म शक्ति का चरम उत्कर्ष 'मुक्ति' स्त्री वाचक शब्द ही है। नारी शांति की शीतल सरिता प्रवाहित करनेवाली है और आध्यात्मिक क्रान्ति की ज्योति को जगमगाने वाली भी है। वास्तविकता यह है कि वह शान्ति और क्रान्ति की पृष्ठभूमि निर्मित करती है।

सार्थक नाम

नारी के बहुविध पर्यायार्थक नाम उसके कार्यों और स्थितियों के अनुसार व्यवहृत हैं। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से 'नारी' शब्द का संधि विच्छेद इस प्रकार हैं – **न + अरि इति नारी – जिसका कोई शत्रु नहीं है, वह नारी है।** उसने आध्यात्मिक और साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति कर पुरुषों को गौरवान्वित किया है। अतः वह **'योषा'** कहलायी, गृह नीति की संचालिका होने से वह **'गृहिणी'** कहलाती है। पूजनीया होने के कारण वह **'महिला'** शब्द से अभिहित है। नारी जीवन के उच्चतम आदर्श का शुभारंभ और समापन 'मातृत्व' में हुआ है। **'माता'** नाम से अधिक पावन आध्यात्मिक नाम नारी का दूसरा नहीं हो सकता। मानवता की रक्षा, आत्मा की संरक्षा वह माता के रूप में ही कर सकती है। माता निर्मात्री है। संसार में अगर कोई देव और गुरु के समान वंदनीय - पूजनीय है तो वह सिर्फ माता ही है। मानव में जो कमनीय और कोमल भावनाएँ है, वे माता की ही देन है। माता से ही मानव (पुत्र) उत्पन्न होता है। मानव का मस्तिष्क, मांस और रक्त यह तीन महत्वपूर्ण अंग माता से ही प्राप्त होते हैं। इसलिए पुत्र माता का कलेजा है। माता का अगाध वात्सल्य इसी पुत्र को प्राप्त होता है। दुनिया के महान् से महान् आत्माओं को जन्म देने वाली नारी है, माता है। तीर्थंकर भी नारी के कोख से ही जन्म लेते हैं। जिस माता ने तीर्थंकर को जन्म दिया उनकी पावनता वचनातीत है। उनके लिए तो यहाँ तक कहाँ गया है कि – संसार में सैकड़ों स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देती है किंतु हे भगवन् ! आप जैसे अद्वितीय अनुपम पुत्ररत्न को जन्म देने वाली स्त्री एक ही हो सकती है। अतएव उसके अनेक नामों में 'जनिः' नाम सर्वथा सार्थक है। माँ अपने रोम-रोम से अपने पुत्र का हित साधन करती है। हम इस सृष्टि-जगत् को भी **धरती माता** कहते हैं। वह जगज्जननी के विशिष्ट रूप में सृष्टि करती है। सरस्वती के रूप में विद्याप्रदान करती है। असुर नाशिनी के रूप में सुरक्षा देती हैं, लक्ष्मी के रूप में अपार-वैभव सौंपती है और शान्ति के रूप में बल का अभिसंचार करती है।

तात्त्विक विभेद नहीं

जैन साहित्य का सर्वेक्षण करने पर स्पष्टतः प्रतीत होता है कि अतीत काल में श्रमणियों का संगठन सुव्यवस्थित एवं अद्वितीय था। जिस युग में जो तीर्थंकर होते थे वे केवलज्ञान के पश्चात् चतुर्विध संघ श्रमण-श्रमणी, श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका की संस्थापना करते हैं। जिसे आगमिक भाषा में तीर्थ कहा जाता है। जिन धर्म का मूलभूत महास्तंभ तीर्थ है। तीर्थंकर व तीर्थंकरत्व तीर्थ पर आधारित है। तीर्थंकर जब समवशरण में धर्मदेशना देते हैं उस समय वे तीर्थ को नमस्कार करते हैं। उक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथन से अति स्पष्ट है कि तीर्थंकर के द्वारा तीर्थ वन्दनीय है। चतुर्विध तीर्थ में आत्मा की दृष्टि से नारी और पुरुष इन दोनों में तात्त्विक विभेद नहीं है, आध्यात्मिक जगत् में नर और नारी का समान रूप से मूल्यांकन हुआ है।

हमारी जैन संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सभी को समान स्थान एवं समान अधिकार प्राप्त है। जिस तरह हमारी मातृभूमि सहिष्णु मानी गई है उतनी ही सहिष्णु नारी है। नारी सेवा रूपा और करूणा रूपा है। सेवा – सुश्रूषा और परिचर्या, दया, ममता आदि के विषय में जब विचार किया जाता है तो हमारी दृष्टि नारी समाज पर जाती है। उसकी मोहक आँखों में करुणारूपी ममता का जल और आँचल में पोषक संजीवनी देखी जा सकती है। कुटुंब, परिवार, देश, राष्ट्र, युद्ध, शांति, क्रान्ति, भ्रान्ति, अंधविश्वास मिथ्या मान्यताओं जैसी स्थितियाँ क्यों न रही हो नारी सदैव लड़ती रही और अपने साहस का परिचय देती रही। पर वह दुःखों को, भारी कार्यों को उठानेवाली 'क्रेन' नहीं है। परंतु वह इनसे लड़नेवाली एवं निरंतर चलती रहनेवाली आरी अवश्य है। मैले आँचल में दुनिया भर के दुख समेट लेना उसकी महानता है। बिलखते हुए शिशु को अपनी छाती से लगा लेना उसका धर्म है। वह सभी प्रकार के वातावरणों में घुल-मिल जानेवाली मधुर भाषिणी एवं धार्मिक श्रद्धा से पूर्ण है। विश्व के इतिहास के पृष्ठों पर जब हमारी दृष्टि जाती है तब ग्रामीण संस्कृति में पलनेवाली नारी चक्की, चूल्हे के साथ छाछ को बिलोती नजर आती है और संध्या के समय वही अंधेरी रात में रोशनी का दीपक प्रज्वलित करती है। हर पल, हर क्षण, नित्य नये विचारों में डूबी हुई रक्षण-पोषण में लगी हुई, अंधविश्वासों से लड़ती हुई नजर आती है। जब वह अपने जीवन के अमूल्य समय को सेवा में व्यतीत कर देती है तब उसे अंधविश्वास एवं मिथ्या मान्यताओं से कोई लेना-देना नहीं होता है।

नारी : धर्म क्षेत्र में अग्रणी

जैन संस्कृति के मूल सिद्धान्तों के प्रगतिशील दर्शन ने नारी को यथोचित सम्मान दिया है। धार्मिक क्षेत्र में भी नर और नारी की साधना में कोई भेद नहीं रखा है। चतुर्विध संघ में नारी को समान स्थान दिया है। साधु साध्वी श्रावक और श्राविका। जैन संस्कृति के श्वेताम्बर परिप्रेक्ष्य में पुरुषों की तरह नारी भी अष्टकर्मों को क्षय करके मोक्ष जा सकती है, जिसका प्रारंभिक ज्वलन्त उदाहरण भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर ने आध्यात्मिक अधिकारों में कोई भेद नहीं रखा। उन्होंने पुरुषों की भांति नारी को भी दीक्षित बनाया है। परिणामतः उन सभी की श्रमणसम्पदा से श्रमणी सम्पदा अधिक रही है। भगवान महावीर के संघ में श्रमणसम्पदा से श्रमणी सम्पदा अधिक रही है। भगवान् महावीर के संघ में श्रमणों की संख्या चौदह हजार थी तो श्रमणियों की संख्या छत्तीस सहस्र थी। जहाँ श्रावकों की संख्या एक लाख उनसठ हजार थी वहाँ श्राविकाओं की संख्या तीन लाख अठारह हजार थी।

भगवान् महावीर की दृष्टि में स्त्री और पुरुष दोनों का स्थान समान था। क्योंकि उन्होंने इस नश्वर शरीर के भीतर विराजमान अनश्वर आत्मतत्त्व को पहचान लिया था। उन्होंने देखा कि चाहे देह स्त्री का हो या पुरुष का, आत्मतत्त्व सभी में विद्यमान है और देह-भिन्नता से आत्मतत्त्व की शक्ति में कोई अन्तर नहीं आता। सभी आत्माओं में में समान बलवीर्य और शक्ति है। इसीलिए भगवान् फरमाते है – "पुरुष के समान ही स्त्री के भी प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में बराबर अधिकार है। स्त्री जाति को हीन पतित समझना केवल भ्रान्ति हैं।

इसीलिए भगवान् ने श्रमणसंघ के समान ही श्रमणियों का संघ बनाया, जिसकी सारणा-वारणा साध्वी प्रमुखा चंदनबाला स्वयं स्वतंत्र रूप से करती थी। मनीषियों ने आध्यात्मिक निर्देशनों की दृष्टि से चंदनबाला को गणधर गौतम के समकक्ष माना।

जैन संस्कृति में नारी के माहात्म्य में सर्वोत्कृष्ट पक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुष से पहले आत्मविकास की चरमस्थिति में पहुँचना है। उदाहरणतः भगवान् ऋषभदेव के समक्ष जब माता मरुदेवी आती है और हाथी पर बैठे-बैठे ही उनकी अन्तश्चेतना उर्ध्वारोहण करने लगती है और वह मायावी भावनाओं से ऊपर उठकर शुद्ध चैतन्य में लीन हो जाती है, उसी आसन पर बैठे-बैठे वह केवलज्ञान और सिद्धगति प्राप्त कर लेती है।

जैन संस्कृति में तीर्थंकर का पद सर्वोच्च माना जाता है। श्वेताम्बर परंपरानुसार मल्लि को स्त्री तीर्थंकर के रूप में स्वीकार करके यह उद्घोषित किया कि आध्यात्मिक विकास के सर्वोच्च पद की अधिकारी नारी भी हो सकती है। उसमें अनंतशक्ति संपन्न आत्मा का निवास है। माता मरुदेवी और मल्लि तीर्थंकर के दो ऐसे जाज्वल्यमान उदाहरण श्रमण संस्कृति ने प्रस्तुत किये हैं, जिनके कारण नारी के संबंध में रची गई, अनेक मिथ्या-धारणाएं स्वतः ही ध्वस्त हो जाती है।

नारी-गरिमा

जैन संस्कृति में नारी की गरिमा आदिनाथ से महावीर युग तक अक्षुण्ण रह सकी। महावीर ने चन्दनबाला के माध्यम से उस परंपरा को एक नवीन मोड़ प्रदान किया। तदुपरांत ही साधु और श्रावक के साथ साध्वी और श्राविका संघ की स्थापना की। साधना के पथ पर नारी ने नव कीर्तिमान स्थापित किये। नारी ने अपने अडिग साधना द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुष से पीछे नही है-

एक नहीं दो-दो मात्राएं नर से बढ़कर नारी।

नारी पर्याय का परमोत्कर्म आर्यिका के महनीय रूप को धारण करने में है। आर्या की व्युत्पत्ति है – **सज्जनों के द्वारा जो अर्चनीय – पूजनीय होती है, जो निर्मल चारित्र को धारण करती है, वह "आर्या" कहलाती है।** आर्या का अपर नाम "साध्वी" है। जो अध्यात्म साधना का यथाशक्ति परिपालन करती है, उसे "साध्वी" कहा जाता है। शम, शील, श्रुत और संयम ही साध्वी का यथार्थ स्वरूप है।

वास्तविकता यह है कि सत्य शील की अमर साधिकाओं की उज्ज्वल परंपरा का प्रवाहमान प्रवाह वस्तुतः विलक्षण प्रवाह है। उनकी आध्यात्मिक जगत् में गरिमामयी भूमिका रही है। **वह उद्दण्डता को प्रबाधित करती है। कठोरता को सात्विक अनुराग के द्रव में घोलकर समाप्त कर देती है। पाशविकता पर वल्गा लगाती है। यथार्थ में साध्विरत्नों ने जहाँ निजी जीवन में अध्यात्म का आलोक फैलाकर पारलौकिक जीवन के सुधार की महती और व्यापक भूमिका का कुशलता एवं समर्थता के साथ निर्वाह किया है। वहीं धर्म प्रचार के गौरवपूर्ण अभियान में भी एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करने में सक्षम रही है।** अतएव वे नारी के गौरवमय अतीत को अभिव्यक्त करती हैं। जिन साध्विरत्नों ने सत्य और शील की विशिष्ट साधना की वे सचमुच में अजर-अमर हो गई। उनका जीवन ज्योतिर्मय एवं परम कृतार्थ हुआ और उनके समुज्ज्वल जीवन की सप्राण प्रेरणाओं से समूची मानवता कृतार्थ होती रही है।

नारी : ज्योतिर्मयी

जैन साहित्य का गहराई से परिशीलन करने पर विदित होगा कि अनेक साध्वियों का ज्योतिर्मय जीवन सविस्तृत रूपेण प्राप्त होता है।

भगवान् ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुंदरी मानवजाति की प्रथम शिक्षिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित है। जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति, आवश्यकचूर्णी व आदिपुराण आदि में इन्हें मानव सभ्यता के आदि में ज्योतिस्तंभ माना है। ब्राह्मी ने सर्व प्रथम अक्षरज्ञान की प्रतिष्ठापना की तो सुंदरी ने गणितज्ञान को नूतन अर्थ दिया है। प्रथम शाश्वत साहित्य के वैभव की देवी है तो दूसरी राष्ट्र की भौतिक सम्पति के हानि-लाभ का सांख्य उपस्थित करती है। दोनों ने सांसारिक आकर्षणों को ताक पर रखते हुए आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर मानवजगत् के बौद्धिक विकास की जो सेवा की है, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारी : उद्‌बोधकरूपा

भगवान् ऋषभदेव ने नारी के उत्थान हेतु जिन चौसठ कलाओं की स्थापना की है, उनमें दोनों आजन्म कुमारियाँ निष्णात थी। उक्त दोनों ने समय अंगीकार कर स्वयं का कल्याण किया और साथ ही बाहुबलि को भी वास्तविकता का परिबोध देकर लाभान्वित किया –

आज्ञापयाति तातस्त्वां ज्येष्ठार्य! भगवनिदम्।
हस्ती स्कन्ध रूढानाम्, केवलं न उत्पद्यते।।

हे ज्येष्ठार्य ! भ. ऋषभदेव का सामयिक उपदेश है कि हाथी पर बैठे साधक को केवलज्ञान – दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है।

राजस्थानी भाषा में –

वीरा म्हारा गज थकी उतरो
गज चढ़िया केवल न होसी ओ.....।

बाहुबलि मुनि के कर्ण-कुहरों मे दोनों श्रमणियों की मधुर हितावही स्वरलहरी पहुँची; तत्काल मुनिवर सावधान होकर चिंतन करने लगे – "यह स्वर बहिन श्रमणियों का है। इनकी वाणी में भावात्मक यथार्थता है। मैं अभिमान-रूप हाथी पर बैठा हूँ। मस्तक मुंडन जरूर हुआ पर अभी तक मान का मुडंन नहीं किया। मुझे लघुभूत बनना चाहिये। अपने से पूर्व दीक्षित आत्माओं का मैंने अविनय किया हैं। मैं अपराधी हूँ। मुझे उनके चरणों में जाकर सवंदन क्षमापना करना चाहिये।"

इस तरह विचारों को क्रियान्वित करने हेतु कदम बढ़ाया। बस, देर नहीं लगी, केवलज्ञान – केवलदर्शन पा लिया – बाहुबलि मुनि ने। यदि ब्राह्मी और सुंदरी उन्हें सचेत नहीं करती, संक्षिप्त पर सारपूर्ण उद्‌बोधन नहीं देती, उनके मिथ्याभ्रम की ओर ध्यान केंद्रित नहीं कराती तो क्या उन्हें केवलज्ञान हो पाता? उक्त कथानक से यह सुस्पष्ट है कि इन दोनों बहनों के निमित्त से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ क्योंकि उपादान के लिए निमित्त का होना न केवल आवश्यक है अपितु अनिवार्य भी है। निमित्त अपने स्थान पर महत्व रखता है और उपादान का भी अपना महत्व है। अन्ततः इन दोनों सतियों ने समग्र कर्मों का समूलतः नाश कर निर्वाण पद की प्राप्ति की। उत्तराध्ययन और दशवैकालिक की चूर्णि में राजमति के अडिग संकल्प और दिव्यशील का वर्णन भी आया है। भगवान् महावीर स्वामी के शब्दों में राजुल के उपदेश से रथनेमि सत्पथ पर वैसे ही चल पड़ते है, जैसे उत्पथगामी मस्त हस्ती अंकुश से नियंत्रित हो जाता है –

अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइओ।

इसके अतिरिक्त साध्वी मृगावती ने अपनी भूल पर पश्चाताप करते हुए अपनी गुरुवर्या चन्दनबाला से पूर्व ही केवलज्ञान प्राप्त किया। साध्वीरत्ना प्रभावती, दमयंती, कुंती, पुष्पचूला, शिवा, सुलसा, सुभद्रा, मदनरेखा, पद्मावती का जीवन भी नारी गरिमा का जीवंत एवं ज्वलंत उदाहरण है।

यद्यपि पुरुषों में ऐसे महान् पुरुष हुए हैं अथवा हैं, जिन्होंने समाज/राष्ट्र एवं विश्व की शान्ति में योगदान दिया है, किंतु पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में ये गुण अपेक्षाकृत अधिक विकसित है। देखा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा मातृजाति में प्रायः कोमलता, क्षमा, दया, स्नेहशीलता, वत्सलता, धैर्य, गांभीर्य, व्रत-नियम-पालन-दृढ़ता, व्यसनत्याग, तपस्या, तितिक्षा आदि गुण प्रचुरमात्रा में पाये जाते है, जिनकी विश्वशान्ति के लिए आवश्यकता है। प्राचीन काल में भी कई महिलाओं, विशेषतः जैन नारियों ने पुरुषों को युद्ध से विरत किया है। दुराचारी, अत्याचारी एवं दुर्व्यसनी पुरुषों को दुर्गुणों से मुक्त करा कर परिवार, समाज एवं राष्ट्र में उन्होंने शान्ति की शीतल गंगा बहाई है। कतिपय साध्वियों की अहिंसामयी प्रेरणा से पुरुषों का युद्ध प्रवृत्त मानस बदला है।

नारी-माहात्म्य : इसी प्रकार सती मदनरेखा ने आत्मशान्ति, मानसिक शान्ति एवं पारिवारिक शान्ति रखने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयत्न किया। यह अद्‌भुत पुरुषार्थ विश्वशान्ति का प्रेरक था। साधना के क्षेत्र में श्रमणी संघ वस्तुतः सफल रहा है। कहीं पर भी असफल होकर (बेरंग-चिट्ठी की तरह) नहीं लौटा। अपने आराध्य तीर्थपति आचार्य-गुरु के साथ ही गुरुणीवर्या के शासन संघ (अनुशासन-आज्ञा) में सदैव समर्पित रहा है – श्रमणीसंघ। देश कालानुसार अनुकूल – प्रतिकूल परिस्थितियों का प्रतिरोध – प्रतिकार किया है – श्रमणीसंघ ने, किंतु संघ के प्रति विद्रोह किया हो या प्रतिकूल श्रद्धा-प्ररूपणा स्पर्शना का नारा बुलंद किया हो ऐसा कहीं पर आगम के पृष्ठों पर उल्लेख नहीं मिलता है।

विविध प्रकार के तप-त्यागमय प्रवृत्ति में साध्वी - समूह ने अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किया है। मगधाधिपति सम्राट् श्रेणिक की पट्टरानियाँ काली-सुकाली-महाकाली-कृष्णा-सुकृष्णा-महाकृष्णा-वीरकृष्णा-रामकृष्णा-पितृसेन-महासेन-कृष्णा तथा नंदादि तेरह और प्रमुख रानियों ने भगवान् महावीर के धर्मसाधना संघ को चार चांद लगाये। तपाचार में अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया। रत्नावली तप, कनकावली, लघुसिंह निष्क्रिड़ीत, महासिंह निष्क्रिड़ीत, सप्त-सप्तमिका, अष्टम-अष्टमिका नवम-नवमिका, दशम-दशमिका, लघुसर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, भद्रोत्तर तप, मुक्तावली स्थापना, इसतरह तपसाधना क्रम को पूरा किया।

भ. महावीर की माता देवानंदा (जिनकी कुक्षि में भ. की आत्मा बयासी रात्रि रही) पुत्री तथा बहिन ने भी भगवान् के शासन में जैन आर्हती दीक्षा स्वीकार की। तप-जप संयम-साधना आराधना की गरिमा-महिमा मंडित पावन परंपरा में वे ज्योतिर्मान साधिकाएँ हो गईं। इसके पश्चात् भी समय-समय पर अनेकानेक संयम-निधि श्रमणियाँ हुई जिन्होंने जिनशासन की महती प्रभावना की। यद्यपि संख्याओं की दृष्टि में आज का श्रमणी-संघ उतना विशाल नहीं है। छोटे-छोटे विभागों में विभक्त है। तथापि यह वर्तमान का श्रमणी समूह महासाध्वी चंदनबाला का ही शिष्यानुशिष्या परिवार है। क्योंकि श्रमणी नायिका चन्दनबाला थी। देश-कालानुसार भले ही कुछ आचार संहिता में परिवर्तन हुआ है फिर भी मूलरूपेण उसी आचार प्रणाली का अनुगामी होकर चल रहा है। कई शताब्दियाँ बीत गई। चन्दनबाला के संघ शासन में एक से एक जिन धर्म प्रभाविक श्रमणियां (वर्तमान दृष्टि से पृथक - पृथक सम्प्रदायों में) हुई। वर्तमान में कुछ वर्षों पूर्व से भी अनेकानेक जिनशासन रश्मियाँ जैनजगत् में विद्यमान है। कई तपोपूत साध्वियाँ हिंसकों को अहिंसक व व्यसनियों को निर्व्यसनी बनाने में कटिबद्ध रही हैं। कई महाभाग श्रमणियों ने धर्म के नाम पर पशु बलियाँ होती थी उसे बन्द करवाईं। ऐसे कार्यों में भी वे सदैव तत्पर रहीं, तथा है।

श्रमणियों का श्लाघनीय योगदान

वस्तुतः जैन संस्कृति के कण-कण और अणु-अणु में जो प्रभाव मुनि श्रमणसंघ का रहा है वैसा ही अद्वितीय अनूठा प्रभाव गौरव श्रमणी जगत् का भी रहा है। जिनवाणी के प्रचार-प्रचार-प्रभावना में अतीत की महान् श्रमणियों का श्लाघनीय योगदान रहा है। विधि-निषेध का कार्य क्षेत्र जो श्रमणों का रहा है वही श्रमणी जगत् का। लोमहर्षक-प्राणघातक परिषह-उपसर्गों के प्रहार जितने श्रमणी जगत् ने सहे हैं, प्राणों की कुर्बानी देकर भी धर्म को बचाया। शील-संयम की रक्षा की और इतनी सुदृढ़ रही कि आततायियों को घुटने टेकने पड़े हैं। यहाँ तक कि मनुष्य ही नहीं, पशु-दैविक जगत् भी श्रमणी जीवन (चरणों में) के सम्मुख नतमस्तक हो गया।

आदरणीय सन्नारियाँ

श्रमणी न केवल ज्योति है अपितु वह अग्नि शिखा भी है। वह अग्निशिखा इस रूप में है कि अपने जन्म-जन्मांतरों के कर्मकाष्ठ को जला देती है और उसके पावन सम्पर्क में समागत भव्य आत्माएं भी अपने चिरसंचित कर्मग्रास को भस्मसात् कर देती है। जैन धर्म नारी के सामाजिक महत्व से भी आँखे मूँद कर नहीं चला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसने सामाजिक क्षेत्र में भी नारी को पुरुष के समान ही महत्व दिया है। संयम के क्षेत्र में भिक्षुणियाँ ही नहीं गृहस्थ उपासिकाएँ भी अनवरत आगे बढ़ी हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख श्रमणोपासक/गृहस्थों का नामोल्लेख जहां होता है वहीं प्रमुख उपासिकाएं की भी चर्चाएं आती हैं। सुलसा, रेवती, जयंती, मृगावती जैसी नारियां महावीर के समवशरण में पुरुषों के समान ही आदर व सम्मानपूर्वक बैठती है। भगवती सूत्रानुसार जयंती नामक राजकुमारी ने भगवान् महावीर के पास गंभीर तात्विक एवं धार्मिक चर्चा की है। तो कोशा वेश्या अपने निवास पर स्थित मुनि को सन्मार्ग दिखाती है।

नारी : श्रद्धा की पर्याय

उत्तराध्ययन सूत्र में महारानी कमलावती एक आदर्श श्राविका थी, जिसने राजा इषुकार को सन्मार्ग दिखाया है। महारानी चेलना ने अपने हिंसापरायण महाराज श्रेणिक को अहिंसा का मार्ग दिखाया। श्रमणोपासिक सुलसा की अडिग श्रद्धा सतर्कता के विषय में हमें भी विस्मय में रह जाना पड़ता है। अम्बड़ ने उसकी कई प्रकार से परीक्षा ली। ब्रह्मा, विष्णु, महेश बना, तीर्थंकर का रूप धारण कर समवशरण की लीला रच डाली, किंतु सुलसा को आकृष्ट न कर सका। सुलसा की श्रद्धा देखकर मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। रेवती की भक्ति देवों की भक्ति का अतिक्रमण करने वाली थी।

नारी सहिष्णु है

उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रमाणित हो जाता है कि जैन दर्शन के मस्तक पर नारी तप शील और दिव्य सौंदर्य के मुकुट की भांति शोभायमान है। उसकी कोमलता में हिमालय की दृढ़ता और सागर की गंभीरता छिपी हुई है। सीता, अंजना, द्रौपदी, कौशल्या, सुभद्रा आदि महासतियों का जीवन चरित्र जैन संस्कृति का यशोगान है। इनके संयम, सहिष्णुता एवं विविध आदर्शों को यदि देवदुर्लभ सिद्धि कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।

ये लब्धियां महाकाल की तूफानी आंधी में भी कभी धूल-धूसरित न होगी। वस्तुतः जैनागमों में नारी जीवन की विविध गाथाएं उन नन्हीं दीप शिखाओं की भांति है जो युग-युगान्तर तक आलोक की किरणें विकीर्ण करती रहेगी। यह दीप शिखाएं दिव्य स्मृति-मंजूषा में जगमगाती रहेगी। वर्तमान परिस्थितियों में यह ज्योति अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी नारी विविध विषमताओं के भयानक दृश्यों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पा रही है। यदि हम जैन श्रमणियों और आदर्श श्राविकाओं की सुष्ठु एवं ज्योतिर्मय परंपरा को एक बार पुनः समय के पटल पर स्मरण करें तो आनेवाले कल का चेहरा न केवल कुसुमादपि कोमल होगा अपितु उसमें हिमालयादपि दृढ़ता का भी समावेश हो जायेगा।

विश्वायतन की नारियाँ

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो प्रतीत होगा कि विश्व में शान्ति के लिए तथा विभिन्न स्तर की शान्त क्रांतियों में नारी की असाधारण भूमिका रही है। जब भी शासनसूत्र उसके हाथ में आया है, उन्होंने पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता, निष्पक्षता एवं ईमानदारी के साथ उसमें अधिक सफलता प्राप्त की है। इन्दौर की रानी अहिल्याबाई, कर्णाटक की रानी चेनम्मा, महाराष्ट्र की चांदबीवी सुल्तान, इंग्लैंड की साम्राज्ञी विक्टोरिया, इजराइल की गेलडामेयर, श्रीलंका की श्रीमती भंडारनायके, ब्रिटेन की एलिझाबेथ, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी आदि महानारियाँ इसकी ज्वलंत उदाहरण है। पुरुष शासकों की अपेक्षा स्त्री शासिकाओं की सुझबूझ, करुणापूर्ण दृष्टि, सादगी, सहिष्णुता, मितव्ययिता, अविलासिता तथा शान्ति स्थापित करने की कार्यक्षमता इत्यादि विशेषताएँ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं। माता जीजाबाई की प्रेरक कहानियों से ही बाल शिवाजी छत्रपति शिवाजी बने। साधु मार्ग से च्युत होनेवाले भवदेव को स्थिर करनेवाली नागिला ही थी। तुलसी से महाकवि तुलसीदास बनने के पीछे नारी का ही मर्मस्पर्शी वचन था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान में नारी किसी भी बात में पीछे नहीं है, पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तैयार है। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा, विजयलक्ष्मी पंडित, मदर टेरेसा जैसी महान् नारियाँ जागृत नारी शक्ति का परिचायक है। देश भक्तिनी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता तथा मेवाड़ की पद्मिनी इत्यादि सुकुमार नारियों का जौहर याद करे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पन्ना धाय के अपूर्व त्याग ने ही महाराणा उदयसिंह को मेवाड का सिंहासन दिलाया, जिससे इतिहास ने नया मोड़ लिया। इसी तरह अनेक नारी रत्नों ने अपने त्याग व बलिदान एवं सतीत्व के तेज से भारतवर्ष की संस्कृति को समुज्ज्वल बनाया। **महर्षि रमण का कहना है – "पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया, तथा जीव मात्र के लिये करुणा संजोनेवाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है। वह तप, त्याग, प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति है। उसकी तुलना एक ऐसी सलिला से की जा सकती है जो अनेक विषम मार्गों पर विजयश्री प्राप्त करते हुए सुदूर प्रान्तों में प्रवाहित होते हुए संख्यातीत आत्माओं का कल्याण करती है। उसमें पृथ्वी के समान सहनशीलता, आकाश के समान चिंतन की गहराई और सागर के समान कल्मष को आत्मसात् कर पावन करने की क्षमता विद्यमान है।"**

नारी की तुलना भूले-भटके प्राणियों का पथ प्रदर्शित करनेवाले प्रकाशस्तंभ से की जा सकती है। उसके जीवन में राहों की धूल भी है, वैराग्य का चन्दन भी है और राग का गुलाल भी है। वह कभी दुर्गा बनकर क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित करती है तो कभी लक्ष्मी बनकर करुणा की बरसात।

नारी : प्रथम गुरु !

नारी इस सृष्टि की प्रथम शिक्षिका है, वही सर्वप्रथम विश्वरूपी शिशु को न केवल अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है अपितु गिरकर फिर उठकर चलने का पाठ भी पढ़ाती है। नारी समाज का केंद्र बिंदु है। बाल संस्कार और व्यक्तित्व निर्माण का बीज समाहित है – नारी के आचार-विचार और व्यक्तित्व में ! उन्हीं बीजों का प्रत्यारोपण होता है, उन बाल जीवों के कोमल हृदय पर जो नारी को मातृत्व का स्थान प्रदान करते हैं। समाज ने नारी को अनेक दृष्टियों से देखा है, कभी देवी, कभी माँ, कभी पत्नी, कभी बहन, कभी केवल एक भोग्यवस्तु के रूप में उसे स्वीकार किया है। समाज की संस्कारिता और उसके आदर्शों की उच्चता की झलक, उसकी नारी के प्रति हुई दृष्टि से ही मिलती है। इस तरह नारी के पतन और उत्थान का इतिहास समाज में धर्म और नीति की उन्नति और अवनति का प्रत्यारोपण कराता है।

नारी बिन नर है अधूरा

पुरुष बलवीर्य का प्रतीक होते हुए भी नारी के बिना अधूरा है। राधा बिना कृष्णा, सीता बिना राम और बिना गौरी के शंकर अर्द्धांग है। नारी वास्तव में एक महान् शक्ति है। भारतवर्ष ने तो नारी में परमात्मा के दर्शन किए हैं और जगद्जननी भगवती के रूपों में पूजा है। नारी समाज का भावपक्ष है, नर है – कर्मपक्ष। कर्म को उत्कृष्टता और प्रखरता भर देने का श्रेय भावना को है। नारी का भाव-वर्चस्व जिन परिस्थितियों एवं सामाजिक आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में बढ़ेगा, उन्हीं में सुखशान्ति की अजस्र धारा बहेगी। माता, भगिनी, धर्मपत्नी और पुत्री के रूप में नारी सुखशान्ति की आधारशिला बन सकती है, वशर्ते कि उसके प्रति सम्मानपूर्ण एवं श्रद्धासिक्त व्यवहार रखा जाए, यदि नारी को दबाया-सताया न जाए तथा उसे विकास का पूर्व अवसर दिया जाए तो वह ज्ञान में, साधना में, तप-जप में, त्याग-वैराग्य में शील और दान में, प्रतिभा, बुद्धि और शक्ति में तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में पिछड़ी नहीं रह सकती। साथ ही वह दिव्य भावनावाले व्यक्तियों के निर्माण एवं संस्कार प्रदान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा परिवार, समाज एवं राष्ट्र की चिरस्थायी शान्ति और प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। परंपरा से विश्वशान्ति के लिए वह महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। नारी मंगलमूर्ति है, वात्सल्यमयी है, दिव्यशक्ति है। उसे वात्सल्य, कोमलता, नम्रता, क्षमा, दया, सेवा आदि गुणों के समुचित विकास का अवसर देना ही उसका पूजन है, उसकी मंगलमयी भावना को साकार होने देना, विश्वशान्ति के महत्वपूर्ण कार्यों में उसे योग्य समझकर नियुक्त करना ही उसका सत्कार-सम्मान है। तभी वह विश्वशान्ति को साकार कर सकती है।

नारी : समग्र व्यक्तित्व का मित्र रूप

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही नारी का स्थान गरिमामय रहा है। **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'** जहां पर नारियों की पूजा और सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। **'इयं वेदिः भुवनस्य नाभिः'** नारी ही संसार का केंद्र है। इन सूत्रों में नारी के प्रति अपार आस्था, श्रद्धा और पूज्य भावना अभिव्यक्त की गई है। कवियों ने उनकी तुलना वर्ण एवं गंध के फूलों की महकती मनोहारिनी माला से की हैं, जननी के रूप में वह सर्वाधिक पूज्य एवं सम्माननीय है, बहिन के रूप में वह स्नेह, सौजन्य एवं प्रेरणा की प्रवाहिनी है, पत्नी/भार्या सहधर्मिणी के रूप में वह मानव के समग्र व्यक्तित्व का मित्र रूप में विकास करती है। वह एक ऐसे असीम सागर के समान है, जिसमें चिन्तन के असंख्य मोती विद्यमान हैं।

दिव्य दृष्टिशीला नारी

"पुरुष शस्त्र से काम लेता है तथा स्त्री कौशल से। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान होती है"

विक्टर ह्यगो ने तो यहाँ तक कहा है –

"Man have sight, woman insight"

अर्थात् – मनुष्य को दृष्टि प्राप्त होती है तो नारी को दिव्यदृष्टि।

अंत में यही कहा जा सकता है कि अत्याचार, अनाचार, दुराचार, पाखंड आदि को दूर करने में नारी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, क्योंकि उसके व्यवहारिक जीवन में मातृत्व गुण के अतिरिक्त पवित्रता, उदारता, सौम्यता, विनय संपन्नता, अनुशासन, आदर सम्मान की भावना आदि गुणों का संयोग मणिकांचन की तरह होता है।

नारी ने धर्मध्वजा को फहराया है। नारी ने ही नियम, संयम व यश कमाया है। अतः यह बात निर्विवाद है कि "जैन धर्म में नारी का स्थान, नारी का योगदान आदिकाल से रहा है, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी बना रहेगा क्योंकि वह धर्म की धुरी है"। सारपूर्ण शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि जैन संस्कृति में नारी का स्थान और महत्व अजोड़ और अनुपम है। नारी ने जिनशासन की प्रभावना में जब से योगदान देना प्रारंभ किया उसका इतिवृत शब्दशः लिखना इस लघुकाय लेख में संभव नहीं है तथापि मेरा विनम्र प्रयास भी उस दिशा में कदम भर है।

❑ **साध्वी डॉ. श्री धर्मशीलाजी का जन्म अहमदनगर में सन् १९३९ में हुआ तथा आपने सन् १९५८ में जैन दीक्षा ग्रहण की। आपने एम.ए., साहित्यरत्न एवं पी.एच.डी. की उपाधियां प्राप्त की हैं एवं जैन दर्शन का अध्ययन किया है। आपके प्रवचन बोधप्रद होते हैं। आपने 'श्रावक-धर्म' पुस्तिका का संपादन किया है। जैन ज्ञान के प्रचार-प्रसार में आप एवं आपकी विदुषी शिष्याएं निरंतर कार्यशील हैं।**

– सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org